THE TIMES OF INDIA

Date:13-04-23

Axe Some Acts

As long as central, state laws on preventive detention exist, their abuse is almost inevitable

TOI Editorials

Two separate cases in the Supreme Court this week highlighted the abuse of India's web of preventive detention laws that confer the executive with extraordinary powers. In one case, SC ticked off the UP government for inappropriately invoking the National Security Act in a case with political undertones. In another case (Pramod Singla vs UoI), the bench pointed out that India's preventive detention laws are a colonial legacy with a potential to be misused.

Preventive detention laws are used in anticipation of a crime. At the central level, they have existed in different forms from 1950, with the draconian NSA introduced over four decades ago. Between 2017 and 2021, annual detentions under NSA ranged between 483 and 741. Keep in mind that SC has said that laws with arbitrary detention powers must be used only in the rarest of rare cases. Also, since it centres on a potential crime, courts must give every benefit of doubt to the detenu. This cardinal principle is not followed often enough. In the case pertaining to the UP government's detention under NSA, the detenu was forced to approach SC following a delay in Allahabad HC in deciding his plea.

GoI data shows that in 2021, preventive detention cases increased by almost 24% to 1. 1 lakh. States, which have their own preventive detention laws, are among the worst offenders, no matter which party is in power. Last year, Madras HC criticised the state for indiscriminate use of the Goondas Act to trigger preventive detentions. Given the politicisation of the police, inevitably the abuse of preventive detention laws has political undertones. The colonial legacy of preventive detention laws means they are often used in cases catalysed mainly by political differences.

The root of the problem is both the intent and wording of laws which provide a broad reading of circumstances under which constitutional rights can be suppressed. This has been the case since 1950. A recent example is the IT Rules 2021 and its amendments that can open the door to action against views deemed officially "unfavourable". Given that SC rulings have unambiguously stated that conditions under which a fundamental right can be suppressed have to be narrowly defined, shouldn't some of the most egregious portions of India's web of preventive detention laws be read down? As long as they are part of the statute, they are bound to be abused.

THE HINDU

Date:13-04-23

Skill over chance

Authorities must create an environment for healthy online games

Editorial

Tamil Nadu Governor R.N. Ravi's assent, on April 7, to the Bill prohibiting online gambling and regulating online games in the State, has brought closure to a controversial issue. Almost all parties, including the AIADMK and the BJP, have backed the legislation, now called the Tamil Nadu Prohibition of Online Gambling and Regulation of Online Games Act. The passage of the Bill has seen ups and downs. About a month ago, the Governor returned the Bill, on the grounds that the State Assembly had "no legislative competence" to enact such a law. In late March, the House re-adopted and sent the Bill back to him. In the meantime, Union Minister of Information and Broadcasting Anurag Thakur had, referring to the presence of "betting and gambling" in the State List (Entry 34), clarified in Parliament that online gambling too came under the jurisdiction of States. The news that the piece of legislation had received the assent of the Governor came out on April 10 — the day the House had adopted a resolution urging the President and the Union government to ensure time-bound gubernatorial assent to Bills passed.

The Governor's approach to the Bill — of late assent — is in contrast to when he approved an identical ordinance in October last. His meeting with e-gaming industry representatives, even as the Bill was under his consideration, came in for criticism. Adding to the intrigue was the Raj Bhavan's silence over four months when the Bill was with the Governor. In fact, on the day that the Raj Bhavan returned the Bill to the Assembly (March 8), there was no official word from the Governor's side in support of his stand. Mr. Ravi could have deflected criticism had he made his stand open, as he had done to a Bill that he had returned in February 2022, seeking exemption for students of the State from the National Eligibility-cum-Entrance Test (NEET) for medicine (this Bill is awaiting presidential assent). Further, with the Centre having notified the IT (Intermediary Guidelines and Digital Media Ethics Code) Rules, there should be no confusion as far as enforcing the law is concerned — which has to be done in conjunction with the IT Act, 2000. Addiction to online gaming has resulted in financial distress in many a family and also caused serious health issues. Even while seeking to implement the law banning online gambling and online games of chance (rummy and poker), the proposed Tamil Nadu Online Gaming Authority should ensure a balance: no restrictions on online games permitted under the Act as well as monitoring of online game providers. In an ever-evolving digital world, it would be in the interests of all to create an environment for healthy online games.

दैनिक भास्कर

Date:13-04-23

संवैधानिक संस्थाओं की गरिमा बरकरार रहे

संपादकीय

तमिलनाडु विधानसभा ने एक प्रस्ताव पारित कर केंद्र सरकार से कहा है कि वह कानून बनाकर राज्यपालों को बाध्य करे कि वे राज्य विधायिकाओं से पारित किसी भी विधेयक को अनुमति देने के संबंध कोर्ट की एक तीन सदस्यीय बेंच ने सरकारी वकील से पूछा कि किस अधिकार से दिल्ली के उप राज्यपाल (एलजी) ने बगैर राज्य मंत्रिमंडल की सहायता और सलाह के एमसीडी में दस सदस्यों को नामित कर दिया। दिल्ली सरकार का आरोप था कि इन कृत्यों से अति उत्साहित हो अधिकारी सीधे एलजी को भेजने लगे हैं। अभी दो दिन पहले एलजी ने सीएम पर तंज कसते हुए कहा कि कुछ लोग आईआईटी से पढ़ने के बाद भी अशिक्षित रह जाते हैं। दरअसल सीएम खड़गपुर आईआईटी से पड़े हैं। उधर उपराष्ट्रपति ने एक बार फिर सलाह दी है कि राजनीतिक लोग विदेश की भूमि पर भारत की आलोचना न करें। यह टिप्पणी कांग्रेस नेता राहुल गांधी के इंग्लैंड में दिए गए बयान से उपजे विवाद के बाद आई है भारत में राज्यवल और स्पीकर की संस्था लगतार विवाद के घेरे में रही हैं। लगभग उन सभी राज्यों में जहां गैर-भाजपा दलों का शासन है राज्यपाल और चुनी हुई सरकार के बीच हर दिन एक अजीब द्वंद्व देखने को मिल रहा है।

Date:13-04-23

भारत का अपने अतीत से टकराव आज भी जारी है

मिन्हाज मर्चेंट लेखक, (प्रकाशक और सम्पादक)

क्या इतिहास की पुस्तकों में रद्दोबदल किया जाना चाहिए? क्या शहरों के नाम बदले जाने चाहिए? इन सवालों का जवाब इस पर निर्भर करता है कि क्या इतिहास की मूल पुस्तकों में ही तथ्यों को तोड़-मरोड़कर नहीं पेश किया गया था और क्या कुछ शहरों के नाम जनसंहार व लूट का महिमामंडन करने वाले नहीं प्रतीत होते हैं? एनसीईआरटी एक स्वायत्त संस्था है, जो शिक्षा मंत्रालय के तहत काम करती है। इन दिनों इस बात के लिए उसकी आलोचना की जा रही है कि उसने 12वीं कक्षा के विद्यार्थियों की पाठ्यपुस्तकों से मुगल दरबार सम्बंधी अध्यायों को हटा दिया। पूर्व शिक्षा मंत्री कपिल सिब्बल इससे बहुत गुस्साए। उन्होंने कहा कि भारत के इतिहास से मुगलों के 'योगदान' को काटा-छांटा जा रहा

है। इसके प्रत्युत्तर में एनसीईआरटी के निदेशक दिनेश प्रसाद सकलानी ने कहा कि यह झूठ है। मुगलों से सम्बंधित कोई चैप्टर्स हटाए नहीं गए हैं। पाठ्यपुस्तकों को नई शिक्षा नीति के अनुसार 2024 में फिर से छापा जाना है।

देश में जनमत पहले ही बहुत विभाजित था, इस विवाद से वह और ध्रुवीकृत हुआ है। अलबत्ता शहरों के नाम बदलना हमारे यहां कोई नई बात नहीं है। चार मेट्रो शहरों में से तीन के पुराने नाम बदले गए हैं- मुम्बई, चेन्नई और कोलकाता। ऐसा उनके स्थानीय नामों को महत्व देने के लिए किया गया। हाल में महाराष्ट्र के उस्मानाबाद का नाम बदलकर धराशिव और औरंगाबाद का नाम बदलकर छत्रपति सम्भाजीनगर किया गया। इन दोनों नामकरणों को बॉम्बे हाईकोर्ट में चुनौती दी गई है और आगामी 20 और 21 अप्रैल को इन पर सुनवाई होगी। याचिकाकर्ताओं का कहना है कि नामकरण का विचार उद्धव ठाकरे सरकार का था और इसे एकनाथ शिंदे की सरकार द्वारा अमल में लाया गया। ऐसा हिंदुओं व मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक तनाव पैदा कर उसका राजनीतिक फायदा उठाने के लिए किया गया है। इसके जवाब में शिंदे-फडणवीस सरकार ने बॉम्बे हाईकोर्ट में शपथ-पत्र दायर करते हुए कहा है कि अधिकतर नागरिकों ने बदलाव का स्वागत किया है। स्थानीय प्रशासन के द्वारा कराए एक सर्वेक्षण से पता चला कि 4 लाख लोगों ने नए नामकरण का स्वागत किया है, जबकि 2.7 लाख इसके विरोध में थे।

बीते वर्षों में अनेक छोटे शहरों के नाम बदले गए हैं, जिन पर इतना विवाद नहीं हुआ। इनमें इलाहाबाद (अब प्रयागराज), होशंगाबाद (अब नर्मदापुरम), खिजराबाद (अब प्रतापनगर) और मियां का बाड़ा (अब महेशनगर हॉल्ट) शामिल हैं।मुगलसराय और हबीबगंज रेलवे स्टेशनों और दिल्ली के मुगल गार्डन के नाम भी बदले गए हैं। लेकिन भविष्य में यह इतना आसान नहीं होगा। जस्टिस जोसेफ और नागरत्न की एक सुप्रीम कोर्ट बेंच ने प्राचीन भारतीय ग्रंथों के आधार पर शहरों के नाम बदलने की एक याचिका को खारिज कर दिया है। जस्टिस जोसेफ ने कहा कि हिंदू धर्म की आध्यात्मिक परम्परा महान है और कोई भी वेद, उपनिषदों, गीता की ऊंचाइयों को छू नहीं सकता। हम उसे छोटा न बनाएं और अपनी महानता को जानकर भी उदार बने रहें। संसार अतीत में भारत की ओर सम्मान से देखता था और आज भी देखता है। मैं ईसाई होने के बावजूद हिंदू धर्म का बड़ा प्रशंसक हूं।

इस पूरे विवाद से एक परिप्रेक्ष्य उभरकर सामने आता है। वो यह है कि भारतीय सेकुलरिज्म के वास्तविक अर्थों को वोट बैंक की राजनीति वाले अल्पसंख्यकवाद की संतुष्टि के लिए दशकों तक ताक पर रखा जाता रहा है। अब बहुसंख्यक समुदाय के द्वारा इसके विरोध में प्रतिक्रिया की जा रही है, जिससे ध्रुवीकरण की स्थिति निर्मित हुई है। इससे जो साम्प्रदायिक विघटन की स्थिति बनी है, उससे दोनों विचारधाराओं के नेताओं को लाभ मिलता है। भारत दुनिया का इकलौता ऐसा देश होगा, जो सदियों तक अपने को गुलाम बनाकर लूटने वालों और अपने लोगों का कत्ल करने वालों का महिमामंडन करता है। क्या भारत के राष्ट्रीय-चरित्र में ही कोई गड़बड़ है, जिससे वह ऐसी आत्महीनता का प्रदर्शन करता है? इतिहास विजेताओं द्वारा लिखा जाता है। लेकिन भारत में इतिहास-लेखन उन लोगों के द्वारा किया जाता रहा है, जो किन्हीं शासकों के विजय-अभियानों के नैरेटिव को सदियों बाद भी प्रश्रय देते हैं। यह एक बौद्धिक दोष है, क्योंकि हमारे इतिहासकार और शिक्षाविद् एक ऐसे सच्चे कथानक का निर्माण करने में नाकाम रहे हैं, जो हमें अपने विभाजित अतीत का एक सही-सही चित्र हमें दिखलाता हो। सेकुलरिज्म का वोट बैंक की राजनीति के लिए दशकों तक दुरुपयोग किया जाता रहा है। अब बहुसंख्यक समुदाय द्वारा इसके विरोध में प्रतिक्रिया की जा रही है, जिससे ध्रुवीकरण की स्थिति बनी है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:13-04-23

एआई से रोजगार को कितना खतरा

अजय मोहंती, (लेखक इंटरनेट उद्यमी हैं)

आइए देखते हैं कि दुनिया भर में विभिन्न प्रकार के मीडिया में आई कुछ सुर्खियों का: 'चैट जीपीटी: 10 ऐसे रोजगार जो आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस यानी कृत्रिम मेधा द्वारा छीने जाने के सर्वाधिक जोखिम में हैं', 'चैटजीपीटी के कारण किन नौकरियों पर है खतरा?', 'इन नौकरियों को चलन से बाहर कर सकता है चैटजीपीटी।' ऐसी सुर्खियों के बाद विस्तार से बताया जाता है कि किस प्रकार की नौकरियों को खतरा है, कौन से पद जोखिम में होंगे और किन उद्योगों पर अधिक खतरा मंडरा रहा है वगैरह...वगैरह।

मुझे स्वीकार करना होगा कि इन खबरों को पढ़कर मुझे ऐसा महसूस होता है मानो मैं सन 1840 के दशक के मैनचेस्टर में पहुंच गया हूं जब कपड़ा बुनने वाली मशीनें सामने आई थीं। मैं अनिच्छापूर्वक सुनता हूं कि शायद मुझे इस तरह के शब्द सुनने को मिलें, 'प्रकृति के बाद श्रम ही हर प्रकार की संपदा का बुनियादी स्रोत है, प्रकृति ऐसे पदार्थ मुहैया कराती है जिन्हें श्रम संपत्ति में बदलता है। हकीकत में यह हर प्रकार के मानव अस्तित्व का बुनियादी आधार है।' प्रिय पाठको आपको पता ही होगा कि ये शब्द फ्रेडरिक एंगेल्स के हैं। अपने समय के महान दार्शनिकों में शामिल रहे एंगेल्स एक अमीर जर्मन परिवार से आते थे। उनके पिता ने उनहें परिवार की बुनाई मिलों में से एक चलाने के लिए मैनचेस्टर भेजा था। उन्होंने बहुत जल्दी यह काम छोड़ दिया और कार्ल मार्क्स के साथ मिलकर मार्क्सवादी दृष्टिकोण पर काम करना शुरू कर दिया। आइए देखते हैं कि किस प्रकार के और कितने रोजगारों के जाने के बारे में बात की जा रही है?

गोल्डमैन सैक्स के मुताबिक अमेरिका और यूरोप में मौजूदा रोजगार में करीब दो तिहाई किसी न किसी हद तक आर्टिफि शियल इंटेलिजेंस के कारण आने वाले स्वचपालन की जद में हैं। कुल काम का करीब एक तिहाई पूरी तरह आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के जरिये किया जा सकता है। बिज़नेस इनसाइडर की वेबसाइट मैकिंजी इंस्टीट्यूट के हवाले से कहती है कि सॉफ्टवेयर डेवलपर, वेब डेपलपर, कंप्यूटर प्रोग्रामर, कोडर और डेटा साइंटिस्ट जैसे तकनीक आधारित कामों के सबसे अ धिक प्रभावित होने की आशंका है। उसके बाद पत्रकारिता, विज्ञापन जगत की कॉपी राइटिंग और विधिक सलाहकार जैसे कामों का नंबर आएगा।

जब हम नाराजगी से भरे पूर्वानुमान जताने वालों को देखते हैं तो एक बात साफ नजर आती है और वह यह कि वे सभी इस बात पर सहमत हैं कि चैटजीपीटी तथा उस जैसे अन्य इंसानी टेक्स्ट तैयार करने में सक्षम सॉफ्टवेयरों की मजबूती लोगों को चिंतित कर रही है। दूसरे शब्दों में प्रबंधन सलाहकारों से लेकर निवेश बैंकों तक पूंजीवादी मान्यताओं वाले तमाम पर्यवेक्षक वही कह रहे हैं जो फ्रेडरिक एंगेल्स और उनके मित्र कार्ल मार्क्स ने 1840 के मध्य में कहा था।

मैं जिस स्वप्न में था वहां उपरोक्त बातें फ्रेडरिक एंगेल्स कह रहे थे। मैंने सपने में देखा कि मैं फुसफुसाकर उनसे कह रहा हूं, 'लेकिन श्रीमान एंगेल्स, आपके प्रति पूरे सम्मान के साथ मैं कहना चाहता हूं कि क्या आपको यह नहीं नजर आता है कि कपड़ा इतना सस्ता बुना जा रहा है कि भारत के गरीब से गरीब किसान भी कॉटन की धोती और कुर्ता पहन सकते हैं और अब वे अर्द्ध नग्न अवस्था में नहीं दिखते जैसा कि पीढ़ियों से नजर आता रहा है।' सपने में वह कह सकते थे, 'लेकिन श्रीमान बालकृष्णन, मेरे लिए सबसे अधिक मायने यह रखता है कि हाथों से कताई-बुनाई करने वाले बेरोजगार होते जा रहे हैं...यह बात ज्यादा मायने रखती है बजाय इस बात के कि भारतीय किसान अब बेहतर कपास के कपड़े पहन पा रहे हैं।'

चूंकि मुझे ऐसी तकनीक के सामने आने की प्रतीक्षा करनी होगी जो मुझे सन 1840 के मैनचेस्टर के समय में ले जाए इसलिए मुझे कम से कम चैटजीपीटी को लेकर अपनी बात कह लेने दीजिए जो आज हमारे चिंतकों के बीच चिंता का विषय बना हुआ है। इसके लिए मैं अतीत के कुछ उदाहरणों का इस्तेमाल करूंगा।

सबसे पहले बात करते हैं स्टेनोग्राफी की। सन 1970 के दशक के बॉम्बे में जब मैंने पहली बार काम करना शुरू किया था तब प्रमुख सेवा उद्योगों यानी विज्ञापन एजेंसियों, प्रकाशन कंपनियों और बैंकों के कुल कर्मचारियों में से एक चौथाई स्टेनोग्राफर होते थे। उसके बाद ही पर्सनल कंप्यूटर, माइक्रोसॉफ्ट वर्ड और उसके समान अन्य उपाय सामने आए। छह वर्ष से भी कम अवधि के भीतर स्टेनोग्राफर की भूमिका सिमट गई। पर्सनल कंप्यूटर और वर्ड प्रोसेसिंग करने वाले सॉफ्टवेयर न केवल आधिकारिक पत्र लिखने में मददगार साबित हुए बल्कि वे विज्ञापन की कॉपी, आलेख तथा अन्य दस्तावेज तैयार करने में भी सहायता करने लगे। इस प्रकार हमने स्टेनोग्राफर्स को विदाई दी।

अगली बारी लेखाकारों और बुककीपर्स की थी। सन 1970 के दशक के आखिर में बैंकों और कारोबारों में इनकी तादाद कुल कामगारों का करीब दसवां हिस्सा होती थी। उसके बाद अंकेक्षण सॉफ्टवेयर आ गए जिन्होंने ऐसे आधे से अधिक लोगों के रोजगार समाप्त कर दिए। सन 1980 में करीब 10 लाख बैंक कर्मी यह कहते हुए विरोध में हड़ताल पर चले गए कि कंप्यूटर एक पूंजीवादी उपकरण है जो लोगों की नौकरियां छीनेगा।

परंतु उपरोक्त तमाम बातों के विपरीत ध्यान दीजिए कि कैसे हमारा सबसे प्रिय साथी यानी मोबाइल फोन, इंसानी व्यवस्था के बीच अपनी जगह बनाने में कामयाब रहा है। इसने हम में से हर किसी को छायाकार बना दिया है। इसके अलावा इसकी बदौलत सभी वित्तीय सेवाओं का लाभ लेने लगे हैं। इस बीच बैंक शाखाओं और उनमें नजर आने वाले प्रबंधक और लिपिकों की पहुंच सीमित होती जा रही है। अब किसी को रिकॉर्ड और कैसेट प्लेयर तथा टेलीविजन की भी जरूरत नहीं महसूस होती है। हम ये सारा काम अपने छोटे से मोबाइल फोन पर कर लेते हैं और चुटकियों में अपनी पसंद की चीज देख लेते हैं। इस बीच मैंने कभी नहीं देखा कि किसी ने छायाकारों, बैंकरों या मोबाइल फोन के आगमन से प्रभावित किसी अन्य क्षेत्र के लिए लेख लिखे हों और चिंता या शोक जताया हो।

क्या यह संभव है कि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस , चैट जीपीटी आदि हमारे वैसा ही कुछ करें जैसा कि मोबाइल फोन ने किया? यानी हम सभी को शब्दों को रचनात्मक ढंग से बरतने वाला बनाने का काम? क्या वह दुनिया को एक ऐसा स्थान बनाने का उपाय साबित हो सकता है जहां शब्दों के साथ रचनात्मक होना उसी तरह आसान होगा जिस तरह मोबाइल फोन ने तस्वीरों और संगीत आदि के साथ किया है?

राष्ट्रीय सहारा

Date:13-04-23

खतरे में ताइवान

संपादकीय

चीन के विस्तारवादी हौसले बढ़ते ही जा रहे हैं और लगता है उसकी इस हसरत का स्वशासित ताइवान ताजा शिकार होने जा रहा है। अपने छोटे पड़ोसी देश के चारों ओर तीन दिवसीय व्यापक युद्धाभ्यास के बाद चीनी सेना ने घोषणा कर दी है कि वह लड़ाई के लिए पूरी तरह तैयार है। चीन का आक्रामक बयान अमेरिकी प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष केविन मैक्कार्थी और ताइवान की राष्ट्रपति साई इंग-वेन की मुलाकात के तुरंत बाद आया है। चीन की सेना ने पहले ही कह दिया था कि उसका 'जॉइंट स्वॉर्ड' युद्धाभ्यास लड़ाई की तैयारी के लिए की रही गश्त है और ताइवान को चेतावनी है। चीन का कहना है कि हमारे सैनिक लड़ने के लिए तैयार हैं और किसी भी समय ताइवान की स्वतंत्रता के किसी भी रूप को पूरी तरह से नष्ट करने और विदेशी हस्तक्षेप के प्रयास को रोकने के लिए दृढतापूर्वक संकल्पित हैं। ताजा 'जॉइंट स्वॉर्ड' युद्धाभ्यास पिछले अगस्त में चीन द्वारा किए गए उन अभ्यासों के ही समान था, जब अमेरिका की प्रतिनिधि सभा की तत्कालीन अध्यक्ष नैन्सी पेलोसी की ताइवान यात्रा के खिलाफ उसने ताइवान के आसपास समुद्र में लक्ष्यों पर मिसाइल हमले शुरू किए थे। हालांकि हमले छोटे थे। चीन की यह कार्रवाई ऐसे समय की गई जब उसके आक्रामक रवैये के बावजूद अमेरिकी प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष केविन मैक्कार्थी ने अमेरिका के कैलिफोर्निया में ताइवान की राष्ट्रपति साई इंग-वेन की मेजबानी की। लगता है अमेरिका भी ताइवान को बढ़ावा देकर चीन को उकसाने का काम कर रहा है। अमेरिका की राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद के प्रवक्ता जॉन किर्बी ने बाइडन प्रशासन के इस रुख को फिर दोहराया है कि राष्ट्रपति साई का अमेरिका आना किसी नियम का उल्लंघन नहीं है। इसका सैन्य कार्रवाई के जरिए जवाब देने का कोई मतलब नहीं बनता। चीन ने साई की अमेरिकी यात्रा से जुड़े लोगों के खिलाफ यात्रा तथा वित्तीय प्रतिबंध लगाए हैं और सैन्य गतिविधियों में वृद्धि कर दी है। प्रतीत होता है कि चीन सैन्याभ्यास करने के लिए अमेरिका और ताइवान में मेलजोल बढ़ने को युद्ध का बहाना बनाना चाहता है। चीन ताइवान को अपने क्षेत्र का हिस्सा बताता है, जबकि ताइवान का कहना है कि यह स्वशासित द्वीप संप्रभु राष्ट्र है और चीन का हिस्सा नहीं है। फिलहाल, ताइवान जलडमरूमध्य में तनाव चरम पर है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:13-04-23

आस्था को उग्रता की क्या जरूरत

आनंद कुमार, (समाजशास्त्री)

हमारे सामाजिक जीवन में शक्ति-प्रदर्शन का स्थायी महत्व है। सभी लोग ताकतवर या रसूखदार से ही संबंध बनाए रखने में अपनी भलाई समझते हैं। आमजन में यह भरोसा काफी कम है कि शक्तिहीन के साथ न्याय होगा। यही वजह है कि हम अपनी सामाजिक जिंदगी में निजी और सामूहिक स्तर पर शक्ति-प्रदर्शन के अवसरों की तलाश में रहते हैं। इसे तो अब अपने तीज-त्योहार और आस्था में कर्मकांड के रूप में शामिल कर लिया गया है। यही वजह है कि हर तीन-चार महीने के बाद कोई न कोई ऐसा पारंपरिक पर्व या अवसर आता है, जिसमें समाज के अंदर के उप-समूह अपनी-अपनी दावेदारी पेश करते रहते हैं।

हमारे यहां धार्मिक जुलूसों और आयोजनों का एक सामाजिक संदर्भ भी है। हम इसे अपनी आस्था का प्रदर्शन तो बताते ही हैं, इसमें हम अपनी ताकत का प्रदर्शन भी करते हैं। इसी कारण, जब कोई त्योहार सामने आता है, तो धर्म को मानने वालों से ज्यादा कानून और व्यवस्था चलाने वालों की नींद उड़ जाती है।

हाल के दिनों में हमने यह भी देखा है कि बगैर किसी उत्तेजना या स्पष्ट कारण के सांप्रदायिक व सामुदायिक अस्मिता का उग्र प्रदर्शन किया जा रहा है। आखिर ऐसी उग्रता की जरूरत क्यों है? जबकि, इंसान शांतिपूर्ण जीव है और सामुदायिक जीवन में शांति व युद्ध की स्थिति में शांति का पलड़ा ही भारी रहता है। मगर शांति के दो आधार होते हैं- पहला, शांति तब संभव है, जब हम एक-दूसरे के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करें, और दूसरा, जब समाज में प्रतिरोध या दावेदारी नहीं हो, यानी सबकी मौन स्वीकृति हो। देखा यही गया है कि असंतुलन की स्थिति में उग्रता की जरूरत पड़ती है, इसीलिए समाजशात्रियों का सुझाव होता है कि अगर समाज में अकारण हिंसा, उग्रता या उद्दंडता की प्रवृत्ति दिख रही है, तो इसका मतलब है कि समाज को संचालित करने वाले संस्थान या नियमों में सुधार की जरूरत है। यह महज इंसानों के अंदर के पशु के प्रबल होने का संकेत नहीं है, बल्कि यह बताता है कि हमारा समाज कमजोर पड़ता जा रहा है। इसीलिए संकेतों में यह सुझाव दिया जाता रहा है कि जिस समाज में द्वंद्व और तनाव को सुलझाने के शांतिपूर्ण रास्ते बंद हो गए, उस समाज को जाग जाना चाहिए, क्योंकि वह अराजकता की ओर बढ़ रहा है, और कोई भी समाज अराजक जिंदगी को बहुत दिनों तक बर्दाश्त नहीं कर सकता।

धार्मिक और सांस्कृतिक आदर्शों से जुड़े प्रतीक, त्योहार और परंपरा में उग्रता कितनी घातक हो सकती है, इसका एहसास हमें खूब है। हमने इस्लाम को आतंकवाद से जुड़ते देखा है, तो खालिस्तान आंदोलन के समय सिख धर्म का रिश्ता अलगाववादियों से बताने का शर्मनाक परिणाम पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या के बाद देश भर में सिख-हिंसा के रूप में भुगता है। आजकल हिंदू धर्म के मानने वालों में अप्रत्याशित उग्रता का माहौल है। रामनवमी जैसे सौजन्यतापूर्ण आयोजन भी आक्रामक जुलूस में बदलने लगे हैं, जिसका एकमात्र मकसद अन्य धर्मावलंबियों, खासतौर से मुसलमानों को अपनी ताकत दिखाना होता है। यह बेहद चिंता की बात है। इससे बाकी धर्म के लोग भी शिष्टता के बजाय अशिष्ट आचरण का सहारा लेने लगेंगे।

भारतीय समाज की यह दशा बहुत चिंतनीय है। ऐसी परिस्थिति अंग्रेज राज के समापन के समय भी पैदा हुई थी, जिसकी कीमत हमने हिन्दुस्तान के बंटवारे के रूप में चुकाया है। अगर हमारा धर्म नीति, नैतिकता और न्याय का वाहक नहीं रह जाएगा, तो धर्म व अधर्म के बीच का फर्क खत्म हो जाएगा। फिर प्रह्लाद और उसके राक्षस पिता हिरण्यकश्यप के बीच भला क्या अंतर रह जाएगा? द्रौपदी, दुयार्धन और युधिष्ठिर के बीच जो बुनियादी फासला है, उस पर भला कैसे भरोसा करेंगे? राम और रावण के बीच में सीता आखिर राम की क्यों प्रतीक्षा करेगी?

सवाल महज धर्मों के बीच का नहीं है। धर्म के अंदर भी कमजोर और मजबूत के रूप में भेद कायम है। भारतीय संस्कृति में पिछली कुछ शताब्दियों में दबंग जातियों का प्रभुत्व बढ़ा है। इसमें लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं, विशेषकर चुनावी पद्धति ने आग में घी डालने का काम किया है। इसका परिणाम यह निकला है कि जातिगत हिंसा हमारी रोजमर्रा की जिंदगी का अनिवार्य दोष बन गई है। हम अन्य जातियों की छोटी-छोटी घटनाओं या बातों पर भी हिंसा का प्रदर्शन करने लगे हैं। दूसरी जातियों की खुशियों से हमें जलन क्यों होनी चाहिए? दिक्कत यह है कि सिर्फ हिंसा नहीं होती, उसका जमकर राजनीतिकरण भी किया जाता है, जो निंदनीय है। वंचित भारत पर प्रभु वर्ग के व्यवहार पर सत्ता-प्रतिष्ठान अमूमन खामोश रह जाता है, ताकि चुनाव पर उसके असर को परख सके। हमें लैंगिक हिंसा को भी इसी श्रेणी में रखना चाहिए। औरत होने की सजा हमारे समाज का सबसे शर्मनाक पक्ष है, जिस पर चिंतन आवश्यक है। इसमें सिर्फ पुलिस पर भरोसा करने से काम नहीं चलेगा। हमें समाज के जरूरी संस्थानों को भी निगरानी के दायरे में लाना होगा। समाज का प्रभुत्वशाली वर्ग वंचित भारत (स्त्री, दलित, आदिवासी, पिछड़े आदि) के साथ न्यायसंगत, यानी शिष्टाचार या नीतिगत सम्मान का आचरण नहीं कर पाया है, जो हमारे स्वराज्य का अंधकार पक्ष है। जब तक यह स्थिति बनी रहेगी, हमारा लोकतंत्र दोषपूर्ण माना जाएगा।

हमें मौजूदा समय की हिंसा, उग्रता या उद्दंडता की घटना को तात्कालिक नहीं, बल्कि दीर्घकालिक पणिाम की नजरों से देखना चाहिए। अनीति और उग्रता का आधार यदि धर्म बन रहा है, तो सिर्फ उस धर्म में नहीं, उसके अनुयायियों में भी गड़बड़ी है। अक्सर घबराया और डरा हुआ जीव ही हमला करता है। ऐसे में, यदि हम भय के कारण उग्र हो रहे हैं और स्वार्थवश दूसरों के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार कर रहे हैं, तो हम अपने पांव पर खुद कुल्हाड़ी मार रहे हैं। दिखावे की प्रवृत्ति और धार्मिक व संख्या बल का प्रदर्शन कमजोर पड़ते समाज की निशानी है। और, समाज को मजबूती तब तक नहीं मिल सकती, जब तक सद्भाव बढ़ाया नहीं जाएगा। यह भारत में संभव है, क्योंकि शांति का हमारा एक लंबा इतिहास रहा है और अमन-चैन हमारे समाज की आधारशिला है। जब तक यह नहीं होगा, तब तक देश के निर्माण की बात भूल ही जाइए!